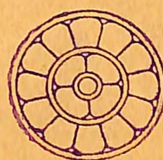
भागवती शक्ति : श्रीमां



श्री अरविन्द केन्द्र, सहारनपुर (उ.प्र.)

श्री अरविन्द केन्द्र
४, कालेज क्वार्टर्स
तिलक नगर, सहारनपुर
की ओर से प्रकाशित

---

२१ फरवरी, १९७५

सुरेशचन्द्र त्यागी
एम. ए., पी-एच. डी.
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
एम० एस० कालेज, सहारनपुर

भागवती शक्ति : श्रीमां

आध्यात्मिक विभूतियों के जीवन के विषय में लिखना बहुत कठिन है क्योंकि हमारी साधारण एवं बाह्य दृष्टि उनके गंभीर रहस्यमय व्यक्तित्व को स्पर्श नहीं कर पाती। उनके व्यक्तित्व के विषय में हमारी सीमित बुद्धि के अनुमान उथले ही सिद्ध होते हैं। श्री अरविन्द आश्रम की माता जी के बारे में भी ऐसा ही है। श्री अरविन्द ने एक बार कहा था कि मेरे जीवन के विषय में कोई नहीं लिख सकता क्योंकि वह साधारण मनुष्यों को दिखाई देने वाला उपरितलीय जीवन नहीं है। श्रीमां का जीवन तो श्री अरविन्द के जीवन से भी अधिक रहस्यमय है अत: उस विषय में लिखना असंभव ही है। एक बार श्रीमां ने स्वयं कहा था कि इस शरीर के भौतिक अस्तित्व के बारे में प्रश्न न पूछो। मैं जाने अनजाने वैसी ही रही हूं जैसी ईश्वर ने चाही हूं, मैंने वही किया है जो ईश्वर ने चाहा है।

श्री अरविन्द ने अपनी पुस्तक 'माता' में लिखा है कि "वे जो एका हैं जिन्हें माता कहकर हम पूजते हैं, भागवती चित्-शक्ति हैं, अखिल विश्व की अधिष्ठात्री देवी। एका होते हुए भी वे इतनी अनेक-रूपरूपा हैं कि उनकी गति को देखना-समझना अति क्षिप्र मन या सर्वथा विनिर्मुक्त परम व्यापक बुद्धि के लिए भी असंभव है।" श्री अरविन्द ने त्रिविध मातृसत्ता का वर्णन किया है—विश्वातीता, विश्वरूपिणी और व्यष्टिरूपिणी। माता के चार महारूप हैं—महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती। एक जिज्ञासु ने जब 'माता' पुस्तक में वर्णित माता की शक्तियों और विविध रूपों के बारे में पूछा कि क्या आपका संकेत श्रीमां की ओर ही नहीं है, तो श्री अरविन्द ने कहा था, 'हाँ, उन्हीं की ओर संकेत है।' भागवती शक्ति ही मानव रूप में यहाँ अवतरित हुई हैं और वे ही श्रीमां हैं।

श्रीमाँ का जन्म पेरिस में २१ फरवरी, १८७८ को एक समृद्ध परिवार में हुआ था। उनके पिता पेरिस में बैंकर थे। कहा जाता है कि इनके पूर्वज फ्रांसीसी नहीं थे बल्कि मिस्र से वहां गये थे। भारत आने से पूर्व के श्रीमाँ के जीवन के बारे में बहुत कम ज्ञात है। आश्रम में जिज्ञासुओं की शंकाओं का समाधान करते हुए उन्होंने प्रसंगवश अपने जीवन के बारे में

यदा-कदा जो संकेत दिये हैं, वही एकमात्र आधार हैं जिनसे कुछ ज्ञात होता है। बाल्यावस्था में ही उन्हें दैवी अनुभूतियां होने लगी थीं। श्री अरविन्द ने लिखा है कि "श्रीमाँ अपने बचपन में भी भीतर में मानवत्व से ऊपर थो।" वे शुरू से ही एकान्त प्रिय थी और उन्हें ध्यान करने में आनन्द आता था। वृक्षों की छाया में बैठना, पक्षियों से स्नेह करना और उनसे एकात्मता अनुभव करना उन्हें अच्छा लगता था। उन्होंने सात वर्ष की अवस्था में अक्षरज्ञान और चौदह वर्ष की अवस्था में चित्रकला का अध्ययन शुरू किया।

इस शताब्दी के आरम्भ में श्रीमां अलजीरिया (उत्तरी अफ्रीका) के नगर क्लेमसेल गई जहाँ उन्होंने प्रसिद्ध तांत्रिक थिओं से गुह्यविद्या की शिक्षा ली। भयानक गर्मी थी वहाँ। एक दोपहर को जब वे ध्यानमग्न होकर एक वृक्ष के नीचे बैठी थीं तो उन्हें अचानक असुविधा-सी अनुभव हुई। आंखें खोली तो देखा कि एक बड़ा विषधर फन फैलाये साक्षात् मृत्यु की तरह सामने सीधा खड़ा है। एकदम समझ में नहीं आया कि वह क्यों क्रुद्ध है। ध्यान आया कि वे सर्प के बिल पर बैठी हैं। अब क्या करें? तनिक भी हिलें तो वह डस लेगा। श्रीमां ने बातचीत में बतलाया कि 'मैं हिली नहीं, न भयभीत हुई। मैंने एकटक उसे देखा और अपनी संकल्पशक्ति का प्रयोग किया। कुछ ही समय बाद उसकी फुंकार बंद हो गई और वह कुछ नम्र होता प्रतीत हुआ। अन्त में उसने अपना फन नीचे किया और शीघ्रता से पास के तालाब में कूद गया।"

श्रीमां ने अपनी बातचीत में एक और घटना सुनाई थी कि जब वे दूसरी बार क्लेमसेल से लौट रही थी तो समुद्र में भयंकर तूफान आ गया। श्री थिओं इनके साथ थे। सारे यात्री भयभीत और किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। जहाज के कप्तान ने स्वयं खतरे की गंभीरता को स्वीकार किया। थिओं ने इनकी ओर देखा और कहा—'जाओ, इसे रोको।' श्रीमां ने बतलाया कि "कप्तान आश्चर्यचकित हो गया। वह श्री थिओं के मंतव्य को समझ न सका लेकिन मैं समझ गई। मैं अपने केबिन में गई, वहां लेटी और शरीर छोड़कर खुले समुद्र में स्वतंत्रतापूर्वक चल दी। तब मैंने देखा कि असंख्य जीव-जन्तु मदमस्त होकर जल में कूद रहे हैं और समुद्र में विपत्ति पैदा कर रहे हैं। मैं वहां गई और बहुत विनम्रता एवं मधुरता से उनसे कहा कि 'इन बेचारे यात्रियों को कष्ट देकर तुम्हें क्या लाभ होगा? कृपया शान्त होकर उनका जीवन बचाओ।' आधा घण्टे तक घूमघूम कर मैं उन्हें शान्त करती रही। उन्होंने अपनी गतिविधियां रोक दीं और समुद्र शान्त हो गया। तब मैं पुन:

अपने शरीर में आ गई और केबिन से बाहर निकल आई।" शरीर छोड़कर यहां-वहां जाने के प्रयोग उन्होंने अनेक बार किये थे।

बचपन से ही श्रीमां को दिव्य ज्ञान प्राप्त था। वे तभी अनुभव करती थी कि एक विशाल चेतन शक्ति से घिरी हुई हैं और एक विस्मयकारी तीव्र आलोक उनके चतुर्दिक् व्याप्त है। इन सब बातों का विश्लेषण करने की वह उम्र नहीं थी। एक रोज उनकी माँ ने पूछा–'तुम सदैव इतनी गंभीर और शान्त क्यों बनी रहती हो जैसे कि सारे संसार का बोझ तुम्हारे ही कंधों पर हो?' उन्होंने उसी गम्भीरता से उत्तर दिया—'हां, ठीक यही बात है। मुझे सारे संसार के लिए कष्टों का भार वहन करना है। मैं इसी वजह से गंभीर हूं।' माँ ने सोचा कि बच्ची पर पागलपन का कुछ असर है। जब श्रीमाँ को भारतीय दर्शन और संस्कृति का ज्ञान नहीं था तभी ११-१२ वर्ष की उम्र में उन्हें कृष्ण की अनुभूति होती थी। उन्हें सदैव यह अनुभव होता था कि भारत ही उनकी मातृभूमि है।

अपने भावी जीवन और लक्ष्य के दर्शन उन्हें स्वप्नों के माध्यम से होते थे। अपनी डायरी में उन्होंने लिखा है कि—"जब मैं बच्ची थी—लगभग तेरह वर्ष की—प्रतिदिन रात्रि को ज्यों ही मैं सोने के लिए पलंग पर जाती, मुझे ऐसा प्रतीत होता कि मैं अपने शरीर से निकल आई हूं और सीधे घर के ऊपर, फिर नगर के ऊपर बहुत ऊंचे, उठ रही हूं। ऐसा लगभग एक वर्ष तक चलता रहा। तब मैं अपने आपको एक बड़ा सुन्दर, स्वर्णिम चोगा पहने देखती जो मुझ से बहुत लम्बा होता। ज्यों-ज्यों मैं ऊपर उठती, वह चोगा लम्बा होता जाता, मेरे चारों ओर घेरे के रूप में इस तरह फैल जाता कि वह नगर के ऊपर एक बहुत बड़ी छत के समान प्रतीत होने लगता। और तब मैं सब ओर से पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों, वृद्धों, रोगियों और दुःखी मनुष्यों को निकलते देखती। वे सब इस विस्तृत चोगे के नीचे एकत्र हो जाते, इससे सहायता की याचना करते, अपने दुःख-कष्ट और पीड़ाएँ सुनाते। प्रत्युत्तर में वह नमनीय और सजीव चोगा उनमें से एक-एक की ओर बढ़ता। ज्यों ही वे उसे छू लेते उन्हें सान्त्वना प्राप्त होती, वे रोगमुक्त हो जाते और वापिस अपने शरीर में लौट जाते। उस समय वे पहले से इतने अधिक प्रसन्न और सशक्त होते जितने वे उसमें से निकलने के पहले कभी नहीं थे। इससे अधिक सुन्दर कार्य मुझे और कोई नहीं प्रतीत होता था, इससे अधिक मुझे और कोई वस्तु आनन्दपूर्ण अनुभव नहीं होती थी।" शुरू से ही उन्हें यह अनुभव होता था कि वे ईश्वर द्वारा किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए पृथ्वी पर भेजी गई हैं।

श्री पाल रिचर्ड के साथ वे सन् १९१४ में सर्वप्रथम भारत आई तो उनकी बहुत दिनों की इच्छा पूर्ण हुई। उन्होंने श्री अरविन्द के दर्शन २९ मार्च १९१४ को किये और अगले दिन अपनी डायरी में लिखा—"अधिक चिन्ता नहीं अगर सैंकड़ों मनुष्य घने अन्धकार में डूबे हुए हैं। वे जिन्हें हमने कल देखा—वे तो पृथ्वी पर ही हैं। उनकी उपस्थिति इस बात का काफी प्रमाण है कि एक दिन आएगा जब अन्धकार प्रकाश में परिवर्तित हो जायेगा, जब तेरा राज्य पृथ्वी पर कार्य रूप में स्थापित होगा।"

पाल रिचर्ड और श्रीमां की आर्थिक सहायता से ही 'आर्य' का प्रकाशन आरंभ हुआ। श्री अरविन्द की दर्शन और योग-विषयक गंभीर रचनायें 'आर्य' में ही प्रकाशित हुई। इसके फ्रेंच संस्करण का संपादन पाल रिचर्ड करते थे। इसी बीच प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया और श्रीमाँ को अपने पति के साथ पेरिस लौटना पड़ा। फलस्वरूप फ्रेंच संस्करण सात अङ्कों के बाद ही बन्द हो गया और 'आर्य' सन् १९२१ तक चलता रहा। लगभग एक वर्ष पेरिस में रहने के बाद वे जापान गई।

श्रीमां ने जापान में हुए एक अनुभव को अपनी डायरी में इस प्रकार अंकित किया है—"जापान की एक सड़क थी जिसे सुस्पष्ट रंगों से सुन्दरतापूर्वक सुसज्जित, मनोरम लालटेनों से अत्यधिक आलोकित किया गया था। और जैसे-जैसे मेरे अन्दर की सचेतन सत्ता सड़क पर आगे बढ़ी, वैसे-वैसे उसने देखा कि प्रत्येक के अन्दर भगवान् दृष्टिगोचर हो रहे हैं। एक छोटा सा घर पारदर्शक बन गया जिससे कि एक औरत दिखाई पड़ने लगी। वह उस घर में एक 'टाटामी' (गद्दी) के ऊपर बैठी थी और एक बहुमूल्य बैंगनी रंग का 'किमोनो' पहने थी जिस पर सोने तथा गहरे रंगों का काम किया हुआ था। वह औरत सुन्दर थी और उसकी उम्र पैंतीस से चालीस वर्ष के बीच अवश्य रही होगी। वह एक सुनहरा 'सामिसेन' यंत्र बजा रही थी। उसके पैरों के पास एक नन्हा सा बालक था और उस औरत के अन्दर भी मुझे भगवान् दिखाई पड़े।" श्रीमां की यह अनुभूति लगभग वैसी ही है जैसी श्री अरविन्द को अलीपुर जेल में हुई थी जब उन्हें हर वस्तु में नारायण के दर्शन हुए थे। जापान में ही श्रीमां की भेंट रवीन्द्रनाथ ठाकुर से भी हुई और उन्होंने श्रीमां से शाँतिनिकेतन का संचालन-भार संभालने का आग्रह किया। श्रीमां के सामने तो दूसरा ही लक्ष्य था अतः वे स्वीकार न कर सकीं। अंततः २४ अप्रैल १९२० को वे दुबारा पांडीचेरी आई और तब से पांडीचेरी आश्रम से बाहर नहीं गई।

साधारणत: श्रीमां अपने जीवन के बारे में कुछ नहीं कहती थी लेकिन सन् १९२० में ही किसी ने श्रीमां से प्रश्न किया था कि वे भारत क्यों आई हैं और श्री अरविन्द का पता उन्हें कैसे लगा तो उन्होंने एक पत्र में लिखा था—"तुम जानना चाहते थे कि मुझे कैसे और कब यह ज्ञान हुआ कि मैं भगवान् के किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए भेजी गई हूं और मैंने श्री अरविन्द को कैसे खोजा ? मैं संक्षेप में बतलाती हूं—

"मेरे लिए यह कहना कठिन है कि मैं सर्वप्रथम कब अपने पूर्वनिर्दिष्ट कार्य के प्रति संचेतन हुई। कदाचित् मैं उस चेतना के साथ ही उत्पन्न हुई थी जोकि मन और मस्तिष्क के विकास के साथ धीरे धीरे स्पष्ट हो गई।

"अपनी आयु के ११ से १३ वर्षों तक मुझे एक के बाद एक ऐसे अनुभव हुए कि मुझे ईश्वर के अस्तित्व का निश्चय ही नहीं हो गया बल्कि यह भी निश्चय हो गया कि मनुष्य के लिए ईश्वर के ऐक्य में रहना संभव है, मनुष्य की चेतना और कार्यों में उसका पूर्व प्रत्यक्षीकरण संभव है और मनुष्य के दिव्य जीवन में भगवान् को प्रकट करना भी संभव है। मैं अपनी नींद में अनेक गुरुओं से एक प्रकार का प्रशिक्षण पाती रही हूं कि यह अनुभव और विचार कैसे भौतिक जीवन में साकार हो सकता है। इनमें से कुछ गुरुओं से मैं बाह्य जगत् में प्रत्यक्ष रूप से मिली। जब मेरी कुछ प्रगति हो गई तो देखा कि उनमें से एक गुरु मुझसे बहुत घनिष्ठ हो गये हैं और उनके साथ गंभीर आध्यात्मिक सम्बन्ध हो गया है। तब मुझे भारतीय दर्शन और धर्मों की अत्यल्प जानकारी थी पर इस व्यक्ति को मैं कृष्ण कहकर पुकारती थी और अनुभव करती थी कि मुझे उससे कभी और कहीं मिलना अवश्य है और भगवान् के उद्देश्य की पूर्ति के लिए साथ साथ काम करना है। मैंने सदैव भारत को अपनी मातृभूमि अनुभव किया है और इससे प्रेम किया है और तब १९१४ में यहां आने का सौभाग्य हुआ। यहां मैंने श्री अरविन्द को देखा और तुरन्त ही उन्हें पूर्वोक्त गुरु के रूप में पहचान लिया जिन्हें मैं 'कृष्ण' नाम से पुकारा करती थी। इन पंक्तियों से तुम जान सकते हो कि मुझे कैसे निश्चय हुआ कि यहां उनके साथ मेरा कार्य-स्थल है और हमें साथ काम करना है।"

जब मां पांडीचेरी आई तो आश्रम जैसी कोई चीज वहां नहीं थी। श्री अरविन्द एक मकान में कुछ साथियों या शिष्यों के साथ रहते थे। धीरे धीरे श्रीमां ने कार्यभार संभाला और अपनी अद्वितीय संचालन प्रतिभा से उसे संवारना शुरू किया। आश्रम वस्तुत: श्रीमां का ही निर्माण है। धीरे धीरे

साधकों की संख्या बढ़ने लगी और आवश्यकतानुसार भवन और भूमि का विस्तार होता रहा। कितना स्नेह श्रीमां ने इसके निर्माण में लुटाया है, यह आश्रम के साधक ही जानते हैं। सन् १९५१ में आश्रम के अन्तर्गत ही श्री अरविन्द के सर्वांगीण शिक्षा के आदर्श को मूर्त्त रूप देने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र का श्री गणेश हुआ। आरंभ में इसका रूप बहुत छोटा था। तब श्रीमां स्वयं भी बच्चों को फ्रेंच पढ़ाती थी, सुन्दर और प्रेरक कहानियां सुनाती थीं और अपने व्यापक एवं गम्भीर ज्ञान का अमृत दान करती थी। श्रीमां की वार्ताएँ इतनी रोचक और प्रेरणादायक होती थी कि बच्चे ही नहीं, वयोवृद्ध साधक भी उन्हें सुनने के लिए एकत्र होते थे। 'श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र' की शिक्षा पद्धति और कार्य-प्रणाली वस्तुत: अलग लेख का विषय है लेकिन प्रसंगवश कहना अनुचित न होगा कि पाश्चात्य और भारतीय शिक्षा-प्रणाली का अद्भुत समन्वय वहां मिलता है। विभिन्न देशों और धर्मों के विद्वान् शिक्षक साधना-भाव से पढ़ाते हैं और जिज्ञासु छात्र-छात्रायें इसी भाव से पढ़ते हैं। श्रीमां ने एक बार कहा था कि शिक्षा बेचने की वस्तु नहीं है। सन् १९५१ में श्रीमां ने एक संदेश देते हुए घोषणा की थी कि "श्री अरविन्द हमारे बीच विद्यमान हैं और अपनी सृजनात्मिका प्रतिभा की संपूर्ण शक्ति के साथ वह विश्वविद्यालय-केन्द्र की रचना का तत्वावधान कर रहे हैं, जिसे वह वर्षों से भावी मनुष्य जाति को अतिमानसिक ज्योति ग्रहण करने के लिए—जो ज्योति आज के श्रेष्ठ जनों को लेकर नयी ज्योति और शक्ति और जीवन को पृथ्वी पर अभिव्यक्त करने वाली एक नयी जाति में रूपांतरित कर देगी—तैयार करने का सर्वोत्तम साधन मानते थे।"

श्रीमां मीरा अलफासा से 'मां' कैसे बनीं, यह भी रोचक प्रसंग है। श्रीमां की आध्यात्मिक उन्नति बहुत द्रुत गति से हुई और सन् १९२६ में किसी दिन श्री अरविन्द ने उन्हें मां (मदर) सम्बोधन दिया। श्री नलिनी कान्त गुप्त ने लिखा है कि कोई निश्चित रूप से नहीं जानता कि किस विशेष तिथि और क्षण में श्री अरविन्द की वाणी से यह शब्द निकला। वह एक दिव्य क्षण था—मानव और धरती के इतिहास की नियति का क्षण था क्योंकि इसी परम क्षण में मां इस भौतिक जगत् में मनुष्य की चेतना में प्रस्थापित हुई थी।

श्रीमाँ की व्यापक एवं गंभीर प्रतिभा का मूल्यांकन तो क्या, उसका अनुमान भी साधारण मानव-बुद्धि की पकड़ से परे है। वे उच्चकोटि की चित्रकार और संगीतज्ञ थीं। उनकी सुन्दर कहानियां और नाटक उनकी साहित्यिक प्रतिभा के निदर्शन हैं। साधकों के प्रश्नों के उत्तरों तथा पत्रों का

परिधि-विस्तार योग, दर्शन, मनोविज्ञान, गुह्यविद्या, आध्यात्मिकता, काव्य और अन्य साधारण-असाधारण विषयों को समेटे हुए है। उनकी व्यक्तिगत डायरी 'प्रार्थनायें और ध्यान' आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिए प्रेरक वाणी है। इन गिनी चुनी तिथियों की डायरी का अनुवाद श्री अरविन्द ने स्वयं किया था और प्रकाशन की प्रेरणा दी थी। उनकी 'शिक्षा' पुस्तक में शिक्षा सम्बन्धी आदर्श हैं। अनेक भाषाओं का उन्हें ज्ञान था। उनकी कृपा का चमत्कारपूर्ण वर्णन करने वाले लोग देश-विदेश में हैं। साधारण मन उन्हीं चमत्कारों से अभिभूत होता है। उसकी दृष्टि आध्यात्मिक चेतना की उस उच्चता तक नहीं पहुंचती जो श्रीमां के व्यक्तित्व में थी। श्रीमां की अन्तर्दृष्टि का विस्तार हम कैसे जान सकते हैं? सन् १९३३ में श्री अरविन्द ने एक साधक के ऐसे ही प्रश्न के उत्तर में लिखा था कि "इस बात तक को कि आज लायड जार्ज ने क्या जलपान किया अथवा रूजवेल्ट ने नौकरों के विषय में अपनी धर्मपत्नी से क्या कहा? भला क्यों श्रीमां को भौतिक स्तर में होने वाली सभी घटनाओं को मनुष्य के ढंग से जानना ही चाहिये? शरीर धारण करने पर उनका कार्य ही है विश्वशक्तियों की क्रियाओं को जानना और अपने कार्य के लिये उनका उपयोग करना; बाकी चीजों का जहाँ तक सम्बन्ध है, जिन चीजों को जानने की उन्हें जरूरत होती है उन्हें वह जानती हैं—कभी तो अपने आंतरिक स्वरूप के द्वारा और कभी अपने भौतिक मन के द्वारा। अपने विश्वव्यापी आत्मा के अन्दर उन्हें समस्त ज्ञान प्राप्त है, पर वह केवल उसी को आगे ले आती हैं जिसे आगे ले आने की आवश्यकता होती है जिसमें कि कार्य किया जा सके।" श्रीमां ने एक प्रसंग में स्वयं कहा था कि, "सच पूछो तो मुझ पर समस्त संसार का उत्तरदायित्व है। उन लोगों का भी जिन्हें मैंने अपने जीवन में एक सेकिंड के लिये ही देखा है। एक बात को याद रखो कि श्री अरविन्द और मैं दोनों एक ही चेतना रखते हैं, हमारा एक ही व्यक्तित्व है।"

श्रीमां किसी धर्म की नेता या अनुयायी नहीं थी। वे मानव मात्र की ही नहीं, प्राणी मात्र की स्नेहमयी मां थी। सन् १९५४ में उन्होंने एक स्वप्न देखा था कि "संसार में एक ऐसा स्थान होना चाहिये जिसे कोई देश या राष्ट्र अपनी ही संपत्ति न कह सके, ऐसा स्थान जहां सब लोग पूरी स्वतन्त्रता से विश्व नागरिक बनकर एकमात्र सत्ता—परम सत्य की आज्ञा का पालन करते हुए रह सकेंगे।" श्रीमाँ का यह स्वप्न 'ऑरोवील' के रूप में साकार हो रहा है। २८ फरवरी १९६८ को इस अद्भुत नगरी की आधारशिला रखी गई और स्वाधीन देशों ने अपने प्रतिनिधियों को अपने देश की मिट्टी लेकर

भेजा जो अन्तर्राष्ट्रीय एकता के प्रतीक रूप में प्रतिष्ठापित की गई। उस ऐतिहासिक अवसर पर श्रीमां ने संदेश दिया कि—

"ऑरोवील विशेष रूप से किसी का नगर नहीं है। वह पूरी मानव जाति का है किन्तु इसमें रहने के लिए व्यक्ति को भागवत चेतना का सहर्ष सेवक बनना होगा।

ऑरोवील अन्तहीन शिक्षा का, सतत विकास एवं एक ऐसे यौवन का स्थल होगा जिसे कभी बुढ़ापा नहीं व्यापेगा।

ऑरोवील भूतकाल एवं भविष्य के मध्य एक सेतु बनना चाहता है। अन्तर और बाहर की सभी खोजों से लाभान्वित होता हुआ ऑरोवील साहसपूर्वक भविष्य की उपलब्धियों की ओर बढ़ेगा।

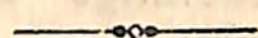
ऑरोवील एक वास्तविक मानव-एकता को सजीव रूप में मूर्तिमन्त करने के लिए भौतिक एवं आध्यात्मिक खोजों का स्थान होगा।"

विश्वैक्य और मानव-एकता के प्रतीक ऑरोवील की योजना के सम्बन्ध में यूनेस्को ने अपने पन्द्रहवें साधारण अधिवेशन में एक प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया था जिसमें ऑरोवील को सफल करने का दायित्व सभी सदस्य देशों ने अपने ऊपर लिया था। विभिन्न राष्ट्रों के निवासियों की ऑरोवील के प्रति बढ़ती हुई रुचि इस नगर की आवश्यकता का प्रमाण है। सहयोग और प्रेम का ऐसा उदाहरण कहीं नहीं मिल सकता। 'ऑरोवील' एक विस्तृत लेख का विषय है। यहाँ प्रसंगवश श्रीमां के इस साकार होते हुए स्वप्न का उल्लेख करना आवश्यक था।

श्री अरविन्द ने लिखा था कि, "केवल एक ही दिव्य शक्ति है जो विश्व में भी कार्य करती है और व्यक्ति में भी और फिर जो व्यक्ति और विश्व के परे भी है। श्रीमां इन सबकी प्रतिनिधि हैं पर वह यहां शरीर में रहकर कुछ ऐसी चीज उतार ले आने के लिए कार्य कर रही हैं जो अभी तक इस स्थूल जगत् में इस तरह अभिव्यक्त नहीं हुई है कि यहाँ के जीवन को रूपांतरित कर सके।" और एक पत्र में किसी साधक को समझाया था कि "श्रीमां तथा जो लोग उन्हें स्वीकार करते हैं, उनके बीच जो सम्बन्ध है वह है चैत्य और आध्यात्मिक मातृत्व का सम्बन्ध। सांसारिक मां का उसके बच्चे के साथ जो सम्बन्ध होता है उससे बहुत अधिक महान् यह सम्बन्ध है। मानव-मातृत्व जो कुछ दे सकता है वह सब कुछ यह सम्बन्ध देता है परन्तु देता

है बहुत ही ऊंचे तरीके से और इसके अन्दर वह अनन्तगुना अधिक मात्रा में होता है।...आध्यात्मिक मातृत्व की भावना इस आश्रम का ही आविष्कार नहीं है; यह एक शाश्वत सत्य है जो प्राचीन काल से यूरोप और एशिया दोनों में ही स्वीकृत होता आ रहा है।" आश्रम के साधकों के लिए श्रीमां क्या थी और क्या हैं, यह शब्दों में नहीं बतलाया जा सकता। उन व्यक्तिगत अनुभूतियों को कैसे अंकित किया जा सकता है जो श्रीमां के दर्शन करने पर लोगों को हुई हैं। चीनी विद्वान् श्री तान यून-शान ने अपनी आश्रम-यात्रा के बाद श्रीमां के विषय में लिखा था—"आश्रम की मां कितनी मधुर स्वभाव वाली हैं! वह एक शक्ति भी हैं जिसे मनुष्य बाध्य होकर अनुभव करता है। मुझे ऐसा लगा मानों मैं एक ऐसे व्यक्ति से बातें कर रहा हूं जो मेरी आत्मा के अत्यन्त निकट है। वह सचमुच सबकी मां हैं और आश्रम की प्रत्येक चीज उनके पथ-प्रदर्शन के अधीन गठित हो रही है।" प्रसिद्ध विद्वान् लेखक श्री शिशिर कुमार मित्र (जो अब आश्रम के साधक हैं) ने सन् १९३९ में जब सर्वप्रथम श्रीमां के दर्शन किये तो लिखा "वह आयु से परे हैं और शाश्वत यौवन की साक्षात् मूर्ति हैं। वह सचमुच ही भगवान् महेश्वर की दिव्य शक्ति राजराजेश्वरी हैं जो सदा ही अपने दुःखी बालकों को अभयदान देती हैं तथा अपनी स्वर्गीय मुस्कान से उन्हें अपने पास आने, उसे स्वीकार करने तथा अमर बनने के लिए पुकारती हैं।"

हम श्रीमां की कृपा के योग्य बालक बनें, यही कामना है।



परिशिष्ट

१७ नवम्बर '७३ को श्रीमां का देहावसान हुआ। यह समाचार देश विदेश के समाचार-पत्रों ने मुखपृष्ठ पर छापा था। अनेक पत्रों ने श्रीमां के चित्र के साथ विशेष लेख प्रकाशित किये थे। राष्ट्रपति श्री वी०वी० गिरि ने अपने शोक संदेश में कहा था कि "श्री अरविन्द आश्रम की मां के निधन का समाचार सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ। उन्होंने सन् १९२० से भारत को ही अपना देश व घर बना लिया था। हजारों लोग उनके भक्त हैं। एक आध्यात्मिक नेता के रूप में और श्री अरविन्द आश्रम की संवाहक शक्ति के रूप में मां ने जो भूमिका अदा की, वह चिरस्थायी रहेगी।" (न. भा. टाइम्स, दिल्ली, १९ नवम्बर '७३)

प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अपने सन्देश में कहा कि—

"I am profoundly grieved at the passing away of the mother of Pondicherry. It was a rare privilege to know such a being and to have her in our midst for so many years. May her words continue to give sustenance to her disciples and others.

"The mother was attracted to India by Sri Aurobindo—a great thinker, revolutionary and man of religion. She immersed herself in his teachings which indeed echoed the best in our ancient philosophy.

"The mother was a dynamic and radiant personality with tremendous force of character and of extraordinary spiritual attainments.

"Yet she never lost her sound practical wisdom which concerned itself with the running of the Ashram, the welfare of the disciples, the founding and development of Auroville and any scheme which would promote the ideals expounded by Sri Aurobindo.

"She was young in spirit and modern in mind. But most impressive was her abiding faith in the spiritual greatness of India and the role which India could play in giving new light to mankind." (Times of India, Delhi, 19-11-73)

श्रीमती गांधी ने १८ नवम्बर '७३ को कानपुर की एक महिला-सभा में भी श्रीमां को श्रद्धांजलि अर्पित की और कहा कि श्रीमां बड़े प्रगतिशील विचारों वाली महिला थी। उन्होंने फ्रांस से आकर भी भारतीय संस्कृति ग्रहण

की। उन्होंने श्रीमती एनी बेसेन्ट तथा श्रीमती सेनगुप्त जैसी महिलाओं को प्रेरणा दी तथा भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में बहुमूल्य योगदान दिया। (हिन्दुस्तान, दिल्ली, १९ नवम्बर '७३) उन्होंने कहा कि अरविन्द आश्रम अन्तरराष्ट्रीय संस्था हो सकती है किन्तु इसकी भावना पूर्णतः भारतीय है। (आज, वाराणसी, १९ नवम्बर '७३)

उड़ीसा के राज्यपाल श्री बी०डी० जत्ती ने कहा कि श्रीमां के निधन से आध्यात्मिक जगत् की बहुत बड़ी हानि हुई है (आज, वाराणसी, १९ नवम्बर '७३) श्रीमती नन्दिनी सत्पथी ने कहा कि श्रीमां ने अपना शरीर त्याग दिया है लेकिन वे सदैव हमारे साथ हैं। (टाइम्स आफ इन्डिया, दिल्ली, १९ नवम्बर '७३)

पांडिचेरी के उपराज्यपाल श्री छेदीलाल ने कहा कि—

"Her death is sad event. She was centre of divine consciousness. Though she has left us physically, her spirit would, however, continue to inspire all humanity to cherish the high ideals of Sri Aurobindo. Several institutions established by the Mother were high creations of her to entire humanity. I pay my respectful homage to her and wish that her spirit continued to inspire all of us." (The Indian Express, 19-11-73)

इस अवसर पर 'हिन्दुस्तान' ने 'अशरीरी मां' शीर्षक से और 'नवभारत टाइम्स' ने 'श्रीमां' शीर्षक से संपादकीय लेख प्रकाशित किये थे। हम यहां उनको छाप रहे हैं। इनके अलावा 'नार्दर्न इन्डिया पत्रिका' तथा 'नेशनल हेराल्ड' के सम्पादकीय भी दिये जा रहे हैं।

श्रीमां (नवभारत टाइम्स, दिल्ली, २० नवम्बर '७३)

श्री मां के स्थूल शरीर की समाप्ति उन लोगों के लिए अवश्य ही शोक का विषय होगा जो साधना की पहली सीढ़ी पर हैं और स्थूल के दर्शन एवं स्पर्श से सूक्ष्म की ओर बढ़ने की तैयारी कर रहे हैं। स्थूल का महत्व है। वर्णमाला का ज्ञान या मूर्ति के दर्शन उन सब के लिए आवश्यक हैं जो अध्ययन अथवा साधना के मार्ग पर बढ़ना चाहते हैं। परन्तु अध्ययन या साधना दोनों के लम्बे दौर में ऐसी स्थिति आती है, जब अध्येता या साधक को वर्ण गिनने अथवा मूर्ति के पास बैठने की आवश्यकता नहीं होती। श्रीमां या उनसे पूर्व योगी अरविन्द अथवा देश के हज़ारों साधुओं और साधकों ने अपनी साधना-उपासना से यही समझाने की कोशिश की कि रास्ता दिखाया भर जा सकता है, उंगली पकड़ कर किसी को कोई इस रास्ते पर चला नहीं सकता। प्रत्येक यात्री को एकाकी अपने रास्ते पर चलना होगा। श्री अरविन्द और उनके

पश्चात् अरविन्द आश्रम तथा उससे बाहर दुनिया भर में फैले हजारों साधकों के लिए श्री मां साधना के क्षेत्र में इस महान भारतीय ज्ञान और इस ज्ञान के अनुरूप कर्म करने की महान प्रेरक शक्ति रहीं।

भारतीय परम्परा में योगियों और संतों के पार्थिव शरीर के नष्ट हो जाने पर शोक मनाने का कोई विधान नहीं। महान योगी श्री कृष्ण का यह आदेश ही मान्य है कि जो जन्मा है वह मरेगा। हां, आत्मा अजर और अमर है।

श्री अरविन्द ने मानव के भविष्य के बारे में जो कुछ सोचा और कहा, श्री मां ने स्वयं और आश्रम के साधकों के माध्यम से उस विश्वास को जमाने और बढ़ाने का प्रयत्न किया। मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही व्यक्ति ने अपने इस विश्वास को दोहराना आरम्भ किया कि व्यक्ति सिर्फ उदर पोषण के लिए जिन्दा नहीं। उसकी रचना किसी व्यापक उद्देश्य से की गयी, जिसकी पूर्ति के लिए व्यक्ति को स्वयं प्रयत्न करना होगा। मानव की भौतिक उपलब्धियां कम नहीं। भौतिक दर्शन और प्रयत्न से वह और महान भौतिक सफलतायें प्राप्त करेगा, परन्तु प्रत्येक भौतिक सफलता उसे अधिक अशांत और अधिक दम्भी बनाती है। वैयक्तिक और सामुदायिक अहंकार बढ़ता जाता है। परिणाम यह होता है कि महान भौतिक सफलताओं के बावजूद व्यक्ति अधिक दुःखी और अधिक उत्पीड़ित महसूस करता है। शान्ति और संतोष कोसों दूर नजर आते हैं।

श्री मां ने श्री अरविन्द के उपदेश के अनुसार मानवता के इस विश्वास और कर्म को पुष्ट करने एवं बढ़ाने की कोशिश की कि भौतिक को सीमित कर आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रगति के लिए प्रयत्न किया जाय। यह आधिभौतिक साधना ही ऐसी है, जो परम शांति और संतोष का द्वार खोलती है।

श्री मां का, श्री अरविन्द की ही भांति, यह दृढ़ विश्वास था कि पश्चिम सिर्फ स्थूल या भौतिक दृष्टि ही प्रदान कर सकता है। जिस अन्तर या सूक्ष्म दृष्टि को पा कर मानव पूर्ण या महान बनता है, वह दृष्टि भारत प्रदान कर सकता है। मानवता जिस अनुदारता की प्रायः शिकार होती रही, उससे त्राण दिलाने में भारत का आध्यात्मिक चिन्तन और भारतीय साधना ही सहायक हो सकती है। आसुरी प्रवृत्तियाँ निम्न स्तर की आकाँक्षाओं—भूख, धन, यश आदि—की तृप्ति को ही जीवन की महान सफलता मानती हैं, परन्तु इनसे समाज जिस प्रकार मानव से दानव बनता है, उसके दृश्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। विज्ञान और तर्क का सहारा लेकर प्रत्येक समस्या के समाधान का दावा किया जाता है परन्तु क्या अब तक ऐसा किया जा

सका है? समस्याओं का समाधान तो उसी उपाय से संभव है, जिसकी खोज भारतीय ऋषियों और योगियों ने की और जिसे साधना द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में उतारना है।

श्री मां का पार्थिव शरीर चाहे न रहा हो, परन्तु योग और साधना का मार्ग अमर है। सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि श्री अरविन्द की ही भांति श्री मां भी स्थूल से उठकर सूक्ष्म में समा गयीं। प्रत्येक साधक इसी प्रकार ज्योतिर्मार्ग से आगे बढ़ जाता है।

अशरीरी मां (हिन्दुस्तान, दिल्ली, १९ नवम्बर '७३)

पांडीचेरी में श्री अरविन्द आश्रम की संचालिका श्री मां अब पांच भौतिक रूप में आंखों से अदृश्य हो गई हैं। लेकिन वास्तविक रूप में तो वह दिव्य ज्ञान तथा दिव्य शक्ति की एक पुंज थीं। देह रूपी एक स्थूल आवरण के भीतर जो आध्यात्मिक शक्ति दशाब्दियों तक भारत में ही नहीं अपितु अन्य देशों में भी लाखों नर-नारियों को भागवत पथ पर चलने के लिए प्रेरणा देती रही और स्नेहपूर्ण पथ-प्रदर्शन करती रही, उसका अन्त नहीं हो सकता। अशरीरी मां अपने श्रद्धालु भक्तों तथा अनुयायियों को प्रेरित करती रहेंगी कि वे इस पृथ्वी में ही स्वर्ग की स्थापना के महानतम लक्ष्य की पूर्ति के लिए अपनी साधना में कोई कमी न आने दें।

श्रीमां जब एक बालिका थीं तभी उन्हें यह दिव्य अनुभूति होती थी कि एक महान ईश्वरी कार्य के लिए ही वह इस धरती पर आई हैं। १९१४ में जब उन्होंने पांडीचेरी आकर श्री अरविन्द के दर्शन किए तब उन्हें यह स्पष्ट विदित हो गया कि मानव के उच्चतम उत्थान के लिए सक्षम जिस महापुरुष को वह खोज रही हैं वह श्री अरविन्द ही हैं। श्री अरविन्द एक महान देशभक्त, दार्शनिक, कवि, लेखक के साथ महान योगी भी थे। उनके योग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें आत्मज्ञान या मोक्ष-प्राप्ति तक ही संतुष्ट नहीं हो जाना है किन्तु भागवत शक्ति के साथ एक रूप होकर बुद्धि-मन तथा देह को भी रूपान्तरित करना है। श्री अरविन्द तथा श्रीमां की निश्चित घोषणा थी कि भागवत शक्ति जड़ प्रकृति को भी स्पर्श कर रही है।

मानव ही रूपान्तरित होकर कब महामानव या अतिमानव बनेगा यह नहीं कहा जा सकता। लेकिन विज्ञान ने जैसी आश्चर्यजनक प्रगति की है उसे देखकर यही लगता है कि अब विकास की प्रक्रिया मानव के मन को भी लांघ कर नए आयाम में प्रविष्ट होने वाली है। यह पग आध्यात्मिक शक्ति का ही पग हो सकता है। विश्व में हिंसा, कलह, मदमात्सर्य आदि

के उन्मूलन के लिए आध्यात्मिक शक्ति का आश्रय आवश्यक है। जब भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का सुन्दर संगम होगा तब मानव समाज अवश्य बदलेगा। श्री अरविन्द आश्रम में इसीलिए साधकों के सर्वांगीण विकास पर ध्यान दिया जाता रहा है। श्रीमां की प्रेरणा से पांडीचेरी के पास अरोविल नामक एक अन्तर्राष्ट्रीय नगर बन रहा है जहां सभी निवासी 'विश्व नागरिकों' के रूप में रहकर तथा दुःख, दौर्बल्य और अज्ञान पर विजय प्राप्त कर आदर्श जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

The Mother (National Herald, Lucknow, 21 Nov. '73)

It is said about Sri Aurobindo that both Indian and Western thought met in him. The Mother, who was the presiding spirit of the Aurobindo Ashram at Pondicherry, was a symbol of such fusion of thought. She was the most effective exponent of Aurobindo's philosophy both by word and deed. Her passing marks the end of a spiritual journey which has inspired a large number of people all over the world.

The ashram and the activities there and nearby will be a fitting monument to her. Auroville, the City of Dawn, which is coming up in Pondicherry, was her dream, and people from all over the world will be able to live there as citizens of the world.

More abiding than any building or town is Aurobindo's philosophy which the Mother held dear. Ever since she came under his influence, both embarked upon a spiritual Odyssey, trying to realise life at deep levels of consciousness. Jawahar Lal Nehru described Aurobindo as "one of the greatest minds of his age". And Aurobindo described the Mother as "a power of silence in the depths of God".

● N. I. Patrika (21 Nov. '73)

India, nay the world, has become the poorer by the passing of the Holy Mother of Pondicherry—the French-born Mira Alphonse—at the ripe old age of 96. Here was a dedicated soul who strove selflessly and ceaselessly to bring solace and comfort to a countless number of men and women who went to seek her spiritual blessings. People from all walks of life had come under the spell of her hallowed personality that gave so much and took little in return. The Mother had been looking after the Aurobindo Ashram since 1950 after the death of that great revolutionary-turned-philos-pher Aurobindo Ghosh. The lamp that was lit by Divinity as it were in Paris on February 21, 1878 went out on November 17, 1973 in Pondicherry. But the light that it emitted will continue to shine for long because it was no ordinary light, it will inspire the coming generations here and elsewhere because her message like that of Aurobindo was for the whole world and for all times.

Sweet Mother,

Your physical body belonged to the old creation because you wanted to be one with your children. You wanted this body to uphold the New Body you were building upon it, and it gave you the service you asked of it. You will come with your New Body.

Your children's, the world's call and aspiration, love and consecration are laid at your feet in gratitude.

17-11-1973

मधुर मां,

तुम्हारा शरीर पुरानी सृष्टि का था क्योंकि तुम अपने बच्चों के साथ एक होकर रहना चाहती थीं। यह तुम्हारा नया शरीर बनने के लिए न था। तुम चाहती थीं कि यह शरीर उस नये शरीर को सहारा दे जिसे तुम इसके ऊपर बना रही थी। तुमने उससे जो सेवा माँगी, वह उसने भली प्रकार दी। तुम अपने नये शरीर में आओगी।

तुम्हारे बालकों की तथा जगत् की पुकार और अभीप्सा, उनके प्रेम और समर्पण कृतज्ञता के साथ तुम्हारे चरणों में अर्पित हैं।

१७-११-१९७३

भारत माता का आह्वान !

"हे हमारी मां ! हे भारत की आत्मशक्ति ! हे जननी ! तूने कभी, अत्यन्त अंधकारपूर्ण अवसाद के दिनों में भी, यहां तक कि जब तेरे बच्चों ने तेरी वाणी अनसुनी कर दी, अन्य प्रभुओं की सेवा की तथा तुझे अस्वीकार कर दिया, तब भी, उनका साथ नहीं छोड़ा। हे मां ! आज, इस महान् घड़ी में, जबकि वे जग पड़े हैं और तेरी स्वतन्त्रता के इस उषःकाल में तेरे मुखमंडल पर ज्योति पड़ रही है, हम तुझे नमस्कार कर रहे हैं। हमें पथ दिखा जिसमें स्वतन्त्रता का जो विशाल क्षितिज हमारे सामने उन्मुक्त हुआ है वह तेरी सच्ची महानता का तथा विश्व के राष्ट्र समाज के अन्दर तेरे सच्चे जीवन का भी क्षितिज बने। हमें पथ दिखा जिसमें हम सर्वदा महान् आदर्शों के पक्ष में ही खड़े हों और अध्यात्ममार्ग के नेता के रूप में तथा सभी जातियों के मित्र और सहायक के रूप में तेरा सच्चा स्वरूप मनुष्य जाति को दिखा सकें।"

—श्रीमां

महावीर प्रेस, सहारनपुर